ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-1, No.04, January: 2024

वैदिक काल से गुप्तकाल तक प्राचीन भारत में व्यापार एवं व्यवसाय का विश्लेषणात्मक अध्ययन

अनिता यादव (शोधार्थी) श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राज.)
डॉ. सुरेश कुमार (शोध निर्देशक) श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राज.)

निश्चित रूप से प्रागैतिहासिक कालीन किसी भी व्यापार एवं व्यवसाय को प्रमाणित करना उपलब्ध पुरावशेषों द्वारा कठिन है। प्रागैतिहासिक काल में सामान्यतया भोजन प्राप्ति ही मुख्य कार्य था। क्रमशः मानव जीवन में स्थिरता आयी तब वह आखेट के अतिरिक्त अन्य गतिविधियों की ओर आकृष्ट हुआ। यह कहा जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल में संस्थागत व्यवसाय अस्तित्व में नहीं आये होंगे, किन्तु इनके जीवन–यापन की विभिन्न गतिविधियाँ आगे के काल में व्यावसायिक संस्थाओं के लिए आधार बन गए।

पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर हड़प्पा सभ्यता समकालीन विश्व में एक विकसित एवं समृद्ध सभ्यता थी। इस सभ्यता में नियोजित नगर बसे जहाँ विभिन्न प्रकार के उद्योग, शिल्प, आन्तरिक व्यापार, विदेशी व्यापार भी उन्नत हुए।

हड़प्पा सभ्यता में सूती वस्त्र निर्माण करने की तकनीकि का विकास हुआ तथा उनका व्यापारिक गतिविधियों में भी प्रयोग होने की सम्भावना को व्यक्त किया जा सकता है। मोहनजोदड़ो से एक पैमाने का साक्ष्य मिला है जिससे सामग्रियों को लम्बाई में मापा जा सके। वस्तुतः सूती वस्त्र व्यापार में भी प्रयोग किए जाते रहे होंगे।

कृषि कार्य में हलों का प्रयोग होता रहा होगा जो कालीबंगा के प्रारम्भिक हड़प्पा चरण से प्राप्त जुते हुए खेत और बनावली से प्राप्त मिट्टी के खिलौने हल से प्रमाणित होता है। मनोरंजन भी संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण भाग था जिसको हम नर्तकी की मूर्ति, पासे की गोटियाँ आदि से स्पष्ट कर सकते है।

ऋग्वैदिक आर्य कृषि एवं पशुपालन में सामान रूप से रूचि रखते थे तथापि उनका प्रधान व्यवसाय पशुपालन ही था। गाय का आर्थिक महत्त्व उसके अघ्न्या विशेषण से भी स्पष्ट है। पशुधन के प्रति आर्यो का लगाव दो वैदिक कथाओं (शुनः शपे व ऋज्राश्व) से भी प्रकट होता है।

ऋग्वैदिक काल के समाज में व्यापार एवं वाणिज्य का कोई उल्लेखनीय प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु उत्तर वैदिक समाज में कृषि एवं उत्पादन की बढ़ोत्तरी व्यापार–वाणिज्य को उन्नत किया। वाणिज्या, वणिज इत्यादि शब्द व्यवसाय करने की स्थिति को स्पष्ट करते है।

उत्तर वैदिक काल में इन परिस्थितियों में परिवर्तन होता हुआ दिखता है। समिति जैसी प्रशासनिक संस्थाओं में स्त्रियों के प्रवेश पर अंकुश लगाया गया जबकि सभा में पूर्व के समान सहभागिता थी फिर भी स्त्रियों की स्थिति तुलनात्मक रूप से ठीक थी। ऋग्वैदिक काल में कई प्रकार की व्यावसायिक गतिविधियाँ दिखती है जिनको संपादित करने वाले विभिन्न वर्गों के रूप में अस्तित्व में आते है। इनका उल्लेख अलग–अलग नामो से किया गया है। उदाहरणस्वरूप काष्ठ से संबंधित कार्य करने वाले को तक्षन्, चर्म से कार्य करने वाले को चर्म्मन, वस्त्र बुनने के कार्य से संबंधित लोगों के लिए वाय शब्द प्रयुक्त हुआ है अर्थात विभिन्न व्यापारिक गतिविधियों ने कार्यों के आधार पर सामाजिक वर्ग के रूप में अस्तित्व में आये। उत्तर वैदिक काल में न केवल इन वर्गों की संख्या बढ़ी बल्कि इनके कार्य क्षेत्र में भी विस्तार हुआ।

व्यापारिक गतिविधियों ने न केवल अर्थव्यवस्था को मजबूत किया बल्कि सांस्कृतिक क्षेत्र में, जैसे सामाजिक स्वरूप, तकनीकि विकास, धार्मिक अनुष्ठानों इत्यादि को भी काफी हद तक प्रभावित किया। अब व्यवसाय एवं व्यापार के आधार पर लोगों की सामाजिक पहचान बनने लगी। उत्तर वैदिक कालीन साहित्यों में तक्षा और रथकार को रत्निन की सूची में शामिल किया गया जो एक विशेष व्यवसाय करने के कारण तत्कालीन समाज में इनको सम्मानपूर्वक दृष्टि से देखा जाने लगा।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व से तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक के व्यावसायिक गतिविधियों में व्यापक परिवर्तन यह दिखता है कि इस कालावधि में श्रेणी व्यवस्था का उदय हो चुका था। साहित्यों में उल्लिखित विवरण के आधार पर श्रेणी व्यवस्था या श्रेणियों का संगठन प्रमुखतः व्यापार एवं वाणिज्य से जुड़ा हुआ था। जातकों में 18 श्रेणियों का उल्लेख किया गया है इनमें लुहार, बढ़ई, जौहरी, स्वर्णकार, रथकार इत्यादि अनेक शिल्पों और कलाओं में प्रवीण कारीगरों का उल्लेख है। प्रारम्भिक चरण में जिन श्रेणियों का उल्लेख तत्कालीन साहित्यों में किया गया आगे चलकर यह शिल्पकारों का वर्ग बन गया जो जाति व्यवस्था में किसी जाति विशेष से संबंधित हो गए। श्रेणी व्यवस्था ने निश्चित रूप से न केवल व्यवसाय एवं व्यापारिक गतिविधियों को मजबूत किया बल्कि समाज में ऐसे वर्गों को आधार प्रदान किया जो उस काल के सांस्कृतिक पहचान बन गए।

व्यापार के विस्तार ने यातायात और आवागमन की व्यवस्था में परिवर्तन किया। स्थल भाग पर प्रयोग होने वाले पहियों के अतिरिक्त जल परिवहन भी उन्नत हुआ। जातक कथाओं में लोहे के आवरण चढ़े बैलगाड़ी के पहिए का उल्लेख है जो बैलगाड़ी की कार्य क्षमता को बढ़ाया। इसी क्रम में लोहे के फालयुक्त हल के भी प्रयोग

Copyright @ 2024 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-1, No.04, January: 2024

होने लगे जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में भी वृद्धि हुई और धीरे–धीरे इस काल के बहुसंख्यक लोग आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने लगे। जिसमें आर्थिक समृद्धि के साथ–साथ समाज और संस्कृति के अन्य पक्ष भी उन्नत हुए।

तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रथम शताब्दी ईस्वी का काल मौर्यवंश से जुड़ा है। प्राचीन भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य का राजनीतिक विस्तार भारत के विस्तृत भू–भाग पर था जिसने अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में अपना अहम योगदान किया। पूर्व की व्यवसाय एवं व्यापारिक गतिविधियाँ अभी भी अपना कार्य कर रही थी और साथ में नये गतिविधियों के आयाम जुड़ गए। कौटिल्य का अर्थशास्त्र और यूनानी लेखकों के विवरण में कई व्यवसाय एवं व्यापारिक गतिविधियों का विवरण दिया गया है। इनकी समृद्धि ने न केवल अर्थव्यवस्था को मजबूत किया बल्कि उससे जुड़े सांस्कृतिक पक्ष भी समृद्ध हुए। कृषि के क्षेत्र में सर्वाधिक परिवर्तन दिखता है। भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए नई तकनीकि का प्रयोग किया गया तथा सिंचाई की विकसित प्रणाली बनाई गई। महाभारत और रामायण में कुओं तथा नहरों का उल्लेख किया गया है। इस काल में पशुपालन अर्थव्यवस्था का एक अंग बन गया जिससे पशुओं से जुड़े हुए व्यवसाय विकसित हुए। इनके संरक्षण के लिए राजकीय पदाधिकारी नियुक्त किए गए जैसे विविताध्यक्ष, गोध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, हस्तव्यवसायाध्यक्ष इत्यादि। वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, आभूषण निर्माण उद्योग, काष्ठ उद्योग, चर्म उद्योग ने जहाँ अपने को बड़े उद्योगों के रूप में स्थापित किया वहीं छोटे उद्योग जैसे सुरा उद्योग, मृदभाण्ड उद्योग, भवन निर्माण उद्योग भी विकसित हुए। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सुराध्यक्ष का उल्लेख किया गया है जो शराब बनाने तथा उसकी बिक्री के लिए उत्तरदायी था। पाणिनि ने मिट्टी के बर्तन बनाने वाले को कुलाल तथा पात्र को कौलालक की संज्ञा दी है। जातकों में एक महल को बनाने में 18 शिल्पों को जानने वाले कारीगरों का उल्लेख है।

मौर्य काल में व्यापार एवं व्यवसाय एवं व्यापारिक गतिविधियाँ भी उन्नत थी जिन्होंने मौर्य काल की विशालता को सुदृढ़ करने में अपना योगदान दिया। मुद्राओं का निर्माण व्यापक स्तर पर होने लगा जिनके व्यापारिक कार्यों में प्रयोग होने के उल्लेख किए गए है। प्रशासनिक पदाधिकारियों को भी कार्य के बदले वेतन देने के लिए मुद्राओं का प्रयोग किया जाता था अर्थशास्त्र में इसका विस्तृत विवरण है। मुद्राओं से संबंधित अधिकारी को पण्याध्यक्ष कहा गया। व्यापार आन्तरिक तथा वाह्य दोनों क्षेत्रों से था जिससे स्थल तथा जल मार्गों का प्रयोग किया गया। जलमार्ग से विदेशों के साथ व्यापार किया जाता था जिसका स्ट्रैबों ने समर्थन किया है। वह उल्लेख करता है कि मौर्य शासकों द्वारा समुद्री जहाज बनाने के शिल्प पर एकाधिकार था। इस प्रकार इस काल की विभिन्न व्यवसाय एवं व्यापारिक गतिविधियों ने कई शिल्प को जन्म दिया जिससे विभिन्न सामाजिक वर्ग बने और समाज में एक नई सांस्कृतिक व्यवस्था अस्तित्व में आयी।

मौर्य सत्ता के अवसान के बाद विदेशी शक्तियाँ शक, सिथियन, कुषाण तथा हूण ने भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगे। इन विदेशी शासकों ने भारत पर राजनीतिक विजय प्राप्त करने के पश्चात आर्थिक गतिविधियों को सुदृढ करने की नीति बनाई। ये नव आकान्ता होने के कारण क्षत्रप प्रणाली का गठन किए किन्तु भारतीय संस्कृति एवं धर्म को स्वीकार कर लेने से वे धीरे–धीरे भारतीय समाज के अंग हो गए। इस समय शिल्पियों तथा व्यवसायियों को स्वतंत्र रूप से उत्पाद बढ़ाने एवं अधिकाधिक लाभ कमाने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस काल की व्यवसाय एवं व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार से मुद्रा प्रणाली उन्नति हुई तथा रोम से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार स्थापित हुआ। रोमन संस्कृति का प्रभाव तत्कालीन समाज पर दिखता है रोम को निर्यात किए जाने वाली सामग्रियों में आभूषण, मशाले, कीमती पत्थर आदि सम्मिलित थे। प्लिनी यह उल्लेख करता है कि रोम के निवासी भारत से भोग–विलास की वस्तुओं को आयात करते थे जो उससे संबंधित व्यवसायों को विकसित किया। इस काल में चीन से कच्चे रेशम आते थे जिससे रेशमी वस्त्र का निर्माण किया जाता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस काल में विदेशी व्यापारिक गतिविधियों से सांस्कृतिक तत्वों का आदान–प्रदान हुआ। निश्चित रूप से भारतीय शिल्पों और शिल्पकारों की श्रेणियों को प्रभावित किया। श्रेणी संगठनों द्वारा अनेक जन कल्याणकारी कार्य भी कराए गए जिसका प्रभाव सामाजिक व्यवस्थाओं में दृष्टिगोचर होता है।

आर्थिक सम्पन्नता ने भौतिक व धार्मिक कला मूल्यों की व्यापकता को बढ़ाया परिणामस्वरूप इस काल के कलाकार अनुकरण करने के स्थान पर कला अभिव्यक्ति में नवीन प्रयोग किए।

300 ईस्वी से 600 ईस्वी की व्यवसाय एवं व्यापारिक गतिविधियों का इस काल के विविध पक्षों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। यह काल गुप्त राजवंश से संबंधित है जिसे कुछ इतिहासकारों ने स्वर्ण युग कहा है। स्वर्ण युग कहने का तात्पर्य केवल राज्य विस्तार या आर्थिक समृद्धि ही नहीं थी बल्कि संस्कृति के विविध पक्षों का उन्नत होना महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक गतिविधियों में कृषि, पशुपालन, उद्योग, व्यापार जहाँ बहुत उन्नत हुए वहीं साहित्य, कला, वाह्य देशों से सम्पर्क इत्यादि भी बढ़ा। इस काल में कई जातियाँ या उपजातियाँ व्यावसायिक आधारों पर अस्तित्व में आयी तथा विकसित हुई जो कालान्तर में विभिन्न जातियों के रूप में अपना स्थान लिया। इन्होंने एक नवीन

Copyright @ 2024 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-1, No.04, January: 2024

समाज को बनाने में अपनी भूमिका निभाई। इसी काल में सामन्तवादी व्यवस्था आयी जिसने आर्थिक आत्म निर्भरता को बढ़ाया तथा शिल्पों को प्रोत्साहित किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- अथर्ववेद आर. रौथ एण्ड डब्ल्यू.डी. ह्विटने, बर्लिन, 1956; एस.पी. पंडित, बम्बई, 1995
- अर्थशास्त्र आर. शामशास्त्री, मैसूर, 1919
- अंगुत्तर निकाय भदन्त आनन्द कौसल्यायन, चतुर्थ खण्ड, कलकत्ता, 1957–1969
- अष्टाध्यायी ए. वेदांतावैगिस, कलकत्ता, 1869–74; निर्णय सागर प्रेस, 1929
- उवासगदसाओं ए.एफ. रूडोल्फ होएर्न्ले (Heornle), कलकत्ता, 1890
- ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक एफ. मैक्समूलर, 1890–92
- ऐतरेय ब्राह्मण विद द कमेण्ट्री ऑफ सायण, संपादक टी. बेवर, बोन, 1879
- काठक संहिता संपादक वॉन श्रोडर लैपिजिंग, 1900–11
- चरक संहिता विद द कमेन्टरी ऑफ चक्रपाणिदत्त, बाम्बे, 1941
- चुल्लवग्ग एच. ओल्डेनबर्ग, लन्दन, 1979–1983
- छान्दोग्य उपनिषद् निर्णय सागर संस्करण, बम्बई, 1930 मूल और हिन्दी अनुवाद – बिहारीलालयमुनाशंकर, लखनऊ, 1913
- जातक वी फासवॉल, वाल्यूम VII, लन्दन, 1877–1897; हिन्दी अनुवाद, भदन्त आनन्द, कौसल्यायन, छः जिल्दों में, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, वि.सं.–2013
- तैत्तिरीय संहिता सम्पादक ए. बेवर, बर्लिन, 1871–72
- दिव्यावदान पी. एल. वैद्य, दरभंगा, 1959

Copyright @ 2024 Author